2. योगकुण्डल उपनिषद

उपनिषद् परिचयः इस में कुल 3 अध्याय है जिसमें क्रमशः 87, 49 और 35 मंत्र हैं। प्रथम अध्याय में चित्त की चंचलता का कारण और निवारण का परामर्श दिया गया है। दूसरे अध्याय की विषय वस्तु खेचरी मुद्रा और तीसरे अध्याय में आत्मानुसंधान की साधना, परमपद, मन, बिन्दु, षट्चक्र, ध्यान की विधि और इसके लाभ का वर्णन किया गया है। अन्त में जीवन मुक्ति और विदेह मुक्ति की चर्चा करते हुए विकार रहित परम पवित्र ब्रह्म के स्वरूप के वर्णन के साथ उपनिषद् का समापन किया गया है। इस प्रकार योग के सभी प्रमुख आयामों पर विस्तार पूर्वक चर्चा करते हुए विषय को पूर्णतः प्रदान की गयी है।

इस उपनिषद् के अनुसार योग प्राप्ति के लिए चित्त का स्थिर होना आवश्यक है और चित्त की चंचलता के मुख्य दो कारण वासना और वायु हैं। इस उपनिषद् में वायु को स्थिर करने का परामर्श दिया गया है क्योंकि वायु के स्थिर होने से वासना अर्थात् पूर्व अर्जित संस्कार स्वतः नष्ट हो जाते हैं। प्राणों अर्थात् वायु पर विजय पाने के लिए साधक को मिताहार, आसन और शक्तिचालिनी का अभ्यास करना चाहिए।

मिताहार : मिताहार के अन्तर्गत स्निग्ध और मधुर आहार को आधा पेट, चौथाई भाग जल एवं चौथाई भाग वायु के लिए खाली रखते हुए शिव के निमित्त आहार ग्रहण करने को मिताहार कहा गया है।

आसन : प्राणायाम के अभ्यास के लिए दो प्रकार के आसनों का उल्लेख किया गया है :

1. पद्मासन
2. वज्रासन

   यहाँ वज्रासन की विधि हठप्रदीपिका में बतायी गयी वज्रासन के विधि से मेल खाती है, जो सिद्धासन के मेल खाते हुए प्रचलित वज्रासन के विल्कुल भिन्न है।

शक्तिचालिनी : कुण्डलिनी शक्ति को चालन क्रिया के द्वारा भ्रू मध्य में ले जाने को 'शक्ति चालिनी' क्रिया कहते हैं। इसके दो साधन हैः

1. सरस्वती चालन।
2. प्राणरोध अर्थात् प्राणायाम।.

प्राण और कुम्भक को परिभाषित करते हुए कहा गया है :

प्राणश्च देहगो वायुरायामः कुम्भकः स्मृतः। *योगकुण्डल उपनिषद्* 1/19

अर्थात् शरीर में संचारित वायु को प्राण कहते हैं। जब इस वायु को स्थिर किया जाता है, तब वह कुम्भक कहलाता है।

प्राणायाम के भेद :

स एव द्विविधः प्रोक्तः सहितः केवलस्तथा। यावत्केवलसिद्धिः स्यात्तावत्ससहितमभ्यसेत्।

योगकुण्डल उपनिषद् 1/20

अर्थात् इस उपनिषद् में कुम्भक के मुख्यतः दो भेद है :

1. सहित
2. केवल

यह उपनिषद् केवल कुम्भक की सिद्धि होने तक सहित कुम्भक के अभ्यास का परामर्श देता है, जिसके चार भेद है यथाः

सूर्योज्जायी शातली च भस्त्री चैव चतुर्थिका। भेदैरेव समं कुम्भो यः स्यात्सहितकुम्भकः।

योगकुण्डल उपनिषद् 1/21

अर्थात् सहित कुम्भक के चार भेद है :

1. सूर्य भेदन
2. उज्जयी
3. शीतली
4. भस्त्रिका

उपरोक्त चारों प्रकार के सहित प्राणायामों के अभ्यास के साथ तीन प्रकार के बंधों को लगाने का भी परामर्श दिया गया है। ये तीनों बंध क्रमशः मूल, उड्डियान और जलंधर हैं। अतः इनके अभ्यास का क्रम भी इसी क्रम में है। उपरोक्त चारों प्रकार के प्राणायामों के अभ्यास की संख्या प्रथम दिन 10 बार, दूसरे दिन 15 बार, तीसरे दिन 20 बार करते हुए प्रति दिन 5–5 की संख्या को बढ़ाना चाहिए।

प्राणायाम में निषिद्ध : ''दिन में सोना, रात्रि जागरण, अतिमैथुन, मलमूत्र वेग को रोकना, ज्यादा चलना, उचित विधि से आसनों का अभ्यास न करना, प्राणायाम के अभ्यास में अधिक शक्ति का प्रयोग करना तथा चिन्ता। प्राणायामों के अभ्यास में उपरोक्त दोषों को नहीं रहना चाहिए। यदि इन दोषों के साथ प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है, तो अभ्यासी विविध प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाता है।

योगाभ्यास के विघ्न :

योगकुण्डल उपनिषद् ने योगाभ्यास के 10 विघ्न माने हैंः

1. मैं योगाभ्यास द्वारा रोगी हो गया हूँ।
2. शंका।
3. प्रमत्तता।

4. आलस्य।
5. अधिक निद्रा।
6. साधना के प्रति प्रेम का अभाव।
7. भ्रान्ति।
8. विषय वासना के प्रति राग।
9. अप्रसिद्धि या अनाम।
10. योगतत्व की अप्राप्ति।

उपरोक्त 10 प्रकार के विचारों का योग साधक के मन में आना योग मार्ग के विघ्न हैं। योग साधक को इनका परित्याग कर देना चाहिए।

स्वानुभव या ब्रह्म प्राप्ति का उपाय : यह उपनिषद् ब्रह्म या परमात्म तत्व की प्राप्ति के उपाय को बताते हुए कहता है कि विषय और कामना दोनों से पृथक होकर आत्मा में ध्यान लगाने से परमात्म भाव की प्राप्ति की जा सकती है। इस उपनिषद् में परमपद को परिभाषित करते हुए कहा गया हैः

मनसा मन आलोक्य तत्त्यजेत्परमं पदम्। मन एव हि बिन्दुश्च उत्पत्तिस्थितिकारणम्।
मनसोत्पद्यते बिन्दुर्यथा क्षीरं घृतात्मकम्। न च बन्धनमध्यस्थं तद्वै कारणमानसम्।।

योगकुण्डल उपनिषद् 3/5–6

अर्थात् मन से मन को देखते हुए उसकी गतिविधियों का अवलोकन कर उनसे मुक्त होना ही परम्पद् है। यह मन ही बिन्दु है और यह मन ही जगत के प्रपंच की उत्पत्ति एवं स्थिति का मुख्य कारण है। जैसै दूध से घी निकलता है, वैसे ही मन से बिन्दु प्रकट होता है। बन्धन मन में है बिन्दु में नहीं।

शरीररूपी घट में स्थिति ब्रह्म कैसे अपने प्रकाश को बाहर प्रसारित करता सकता है? को उदाहरण देकर समझाते हुए उपनिषद् में कहा गया है कि :

भिन्ने तस्मिन्घटे चैव दीपज्वाला च भासते। स्वकायं घटामित्युक्तं यथा दीपो हि तत्पदम्।
गुरुवाक्यसमाभिन्ने ब्रह्मज्ञानं स्फुटीभवेत्। कर्णधारं गुरुं प्राप्य कृत्वा सूक्ष्मं तरन्ति च।।

योगकुण्डल उपनिषद् 3/16–17

अतः जिस प्रकार घड़े के अन्दर रखा हुआ दीपक उसका भेदन किये बिना अपने प्रकाश को बाहर नहीं दे सकता, उसी प्रकार शरीर रूपी घट में स्थिति ब्रह्म रूपी प्रकाश तब तक बाहर नहीं आ सकता जब तक गुरूमुख होकर इस शरीर रूपी घट का भेदन नहीं किया जा सकता।